शोध लेख : नवजागरणकालीन हिंदी उपन्यास और साम्प्रदायिकता

-अमरेन्द्र कुमार
पीएच.डी. (हिंदी साहित्य), गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय
https://sahityacinemasetu.com/shodh-lekh-navjagrankalin-hindi-upanyas-aur-sampradayikta/

नवजागरण आधुनिक भारतीय इतिहास का एक ऐसा पड़ाव था, जहाँ से संभवतः सभी आधुनिक विचार, सभी आधुनिक विमर्शों की रूपरेखा तैयार हुई। वर्तमान में जितने भी विमर्श हैं, उन सबका एक महत्त्वपूर्ण आधार भारतीय पुनर्जागरण में रूपायित होता है। नवजागरण भारतीय इतिहास का वह दौर है जहाँ सभी क्षेत्रों में अचानक अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक बदलाव परिलक्षित होते हैं। स्पष्ट है यह बदलाव अंग्रेजों के आगमन के बाद ही हुए। नवजागरण कई मायनों में अलग-अलग सभ्यताओं और संस्कृतियों के आपसी अंतःक्रिया का परिणाम था। अंग्रेजी शासन के अधीन होने से लेकर स्वाधीन होने तक की पूरी अवधि में भारत ने बहुत बड़े स्तर और सन्दर्भों तक कई महत्वपूर्ण बदलावों को अनुभव किया। राजा राममोहन राय से आरंभ होकर नवजागरण की प्रक्रिया महात्मा गाँधी में अपनी निष्पति प्राप्त करती है। दरअसल, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् समाज, धर्म, अर्थ एवं साहित्य सभी क्षेत्रों में पर्याप्त मुलभूत संरचनागत परिवर्तन हुए। सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर भारतीय समाज का यह संचरण बिलकुल नयी उद्भावनाओं के साथ प्रकट हुआ था। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अंग्रेजों ने भारत में अपने उपनिवेश की स्थापना के पश्चात् भारत की धन-सम्पदा का जी भर दोहन किया, और अपने उपनिवेश की रक्षा और सुविधा हेतु रेल, तार, डाक का जाल भी बिछाया तथा अंग्रेजी शिक्षा और प्रेस की नीव भी रखी, जो कालांतर में प्रकारांतर के फलस्वरूप भारतवर्ष के आधुनिकीकरण का कारण बना।1 नवजागरण के दौर में ही आकर 'राष्ट्र की संकल्पना' का उद्भव हुआ था, जिसने कालांतर में स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। शायद इन्हीं कारणों से रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नवजागरण को 'दो संस्कृतियों और जातियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा'2 कहा है।

बहरहाल, भारत में अंग्रेजों का आगमन निश्चित ही एक नए युग का उद्घोष था। एक ऐसा युग जो मनुष्य के अब तक की वैचारिक बहस और मानसिक संकल्पना से कोसों दूर था। पुनर्जागरण, नवजागरण, पुनरुत्थानवाद आदि संज्ञाओं से अभिहित भारतीय इतिहास का यह दौर कई मायनों में अपने पूर्ववर्ती युगों से बिलकुल भिन्न था। दरअसल, इस दौर की पूर्वपीठिका जहाँगीर के शासन के समय ही 16वीं सदी व्यापार हेतु आये अंग्रेजों के आगमन के निहितार्थ ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ तैयार हो चुकी थी। परन्तु सवाल यह है कि अगर अंग्रेजों ने अपने व्यापार के लिए भारत में कंपनी की स्थापना की तो फिर वह शासक कैसे बन पड़े, जबकि अंग्रेज जब भारत में आये थे तब एक सशक्त मुग़ल वंश पूर्ण रूप से पूर्व ही यहाँ स्थापित था? दरअसल भारत की धन सम्पदा ने अंग्रेजों को यहाँ आकर्षित किया। जब जहाँगीर ने सबसे पहले 1608 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी को सूरत में तंबाकू की कोठी खोलने की अनुमति प्रदान की तभी से यूरोपवासियों का आगमन निरंतर भारत में होता रहा। व्यापार के सम्बन्ध में अंग्रेज भारत से निरंतर सम्पर्क में बने रहे। वह मुग़ल शासकों की धन संपदा, वैभव और ऐश्वर्य से प्रभावित थे। **मिलटन** ने भी अपनी कविताओं में भारत का उल्लेख 'रेशम और जवाहर की जगमगाहट' के साथ किया है।3 फ्रांस के भारत यात्री **बर्नियर**4 ने भी यूरोप में भारत के धनधान्य-पूर्णता का खूब प्रचार किया। हालाँकि, भारत की समृद्धि ने पहले कई 'गजनबियों' को आकर्षित किया था। संयोगवश मुगलों की तरह और उसके पूर्ववर्ती

शासकों की भांति ही भारत की धन-धान्य समृद्धि ने ही अंग्रेजों को आकर्षित किया था। गुलाम वंशी गजनवी को भी यहाँ की धन-सम्पदा ने आकर्षित किया और अंग्रेजों को भी। क्रमशः पूर्ववर्ती वंश परंपरा गुलाम वंश से आरंभ होकर मुग़ल वंश में निष्पन्न होती है, और परवर्ती शासन पुर्तगालियों से आरंभ हो कर अंग्रेजों में। यह एक ऐसा दौर था जब वंशों और सभ्यताओं का आपसी संघर्ष समांतर रूप से जारी था। संयोग यह है कि जिस तरह मध्यकाल में गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैय्यद, लोदी और मुग़ल वंश के शासकों के बीच आपस में सत्ता-संघर्ष हुआ ठीक उसी तरह का संघर्ष दोहराव इस समय पुर्तगाल, हौलैंड, ब्रिटिश, डच, फ्रांस आदि यूरोपीय देशों के मध्य भी परिलक्षित होता है। अंतर केवल इतना है कि मध्यकाल में वंशों के बीच का संघर्ष है और आधुनिक काल में देशों के बीच। अंग्रेजों को भारत में सत्ता हासिल करने में करीब सौ वर्ष लगे, जिसके लिए अंग्रेजों ने कई भयानक युद्ध भी किये। परन्तु सबसे निर्णायक लड़ाईयों में 'प्लासी' और 'बक्सर' की लडाईयां रहीं, जिसके बाद वास्तविक रूप से अंग्रेजों की सत्ता मुग़ल वंश को अपदस्त कर स्थापित हुई।

यह तथ्य तो सर्वविदित है कि, ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना और देखते-देखते अंग्रेजों के उपनिवेशी दासता के अधीन होते भारत में नकारात्मक स्थितियां उत्पन्न होने के साथ-साथ सकारात्मक परिस्थितियाँ भी निर्मित हो रही थी। पश्चिम के समुद्री मार्ग से आई यूरोपीय शक्तियों के साथ पश्चिम का उदार दृष्टिकोण भी आया, उदार विचार आये, फलतः भारत की बौद्धिक क्रियाशीलता में एक अपूर्व स्फोटन हुआ, जिसका सीधा और मौलिक प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परंपरागत विचारों पर पड़ा। निश्चित ही समाज, संस्कार और धर्म का यह मौलिक रूपांतरण अंग्रेजी शिक्षा से प्रेरित और प्रभावित था। अंग्रेजी शोषण के विशाल समुद्र से नए विचार, नई दृष्टि और नवीन शिक्षा पद्धति की एक ऐसी अलग धारा बह रही थी जिसने भारतीय जनमानस को जागृत भी किया और आंदोलित भी। दरअसल यहीं से नवीन भारत का अरूणोदय हुआ जिसे भारतीय इतिहास में नवजागरण के नाम से अभिहित किया गया। यह एक नवीन जागृति थी जिसमें अतीत के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि भी थी और भविष्य के लिए नयी उच्चाकांक्षाएँ भी। प्राचीन परंपरागत आस्था और श्रद्धा का स्थान तर्क, विज्ञान तथा अविष्कार ने ले लिया था। इसी तार्किक संस्कृति के विकास के फलतः सुधारार्थ कई प्रयास किये गये। सुधारार्थ उत्साह के तहत कई नवीन संकल्पनाओं का उद्भव हुआ, जिसके फलस्वरूप शास्त्रों का नए आलोचनात्मक ढंग से पुनर्निरीक्षण किया जाने लगा। इतिहास में छुपी नयी संभावनाओं को तलाशा जाने लगा। इन सभी परस्पर नवीन वैचारिक अंतःक्रियाओं ने कट्टर अंधविश्वासों एवं अभ्यासों को नया रूप दिया। नवजागरण को लेकर कई विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। इतिहासविदों से लेकर साहित्यकारों और समाजशास्त्रियों तक ने नवजागरण के सन्दर्भ में अपने अपने मत अभिव्यक्त किये हैं। करीब करीब सभी विद्वान पुर्णतः अथवा आंशिक तौर से अंग्रेजों के आगमन को नवजागरण का उत्प्रेरक मानते हैं। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही पश्चिम के आयतित विचारों को जब भारत का(सबसे पहले बंगाल का) जनमानस स्वीकृति प्रदान करने लगा तब कई मायनों में इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, भूगोल, गणित आदि अनुशासनों की विचारशैली और चिंतनशैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और ऐसा होना लाज़मी भी था। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत की शिक्षण पद्धति जीर्ण-शीर्ण, गतानुगतिक और निष्प्राण थी। पोथियों में लिखी गयी बातों को लोगबाग सिर्फ कंठस्थ करने में लगे हुए थे। नया सोचने अथवा नया अनुसन्धान करने की प्रवृति अंग्रेजी राज के पूर्व भारत की शिक्षण पद्धति में शामिल नही थी।5 अंग्रेजों के आगमन के बाद अंग्रेजी भाषा धीरे-धीरे पाँव फ़ैलाने लगी, जिसमें कंपनी के कर्मचारी और ईसाई धर्म प्रचारकों के समूह ने महत्ती सहायता प्रदान की। हालाँकि इसमें इन सबका अपना निजी उपनिवेशी और धार्मिक हित छुपा हुआ था, परन्तु वहीं दुसरी ओर कुछ ऐसे

भी उदार भारतीयों का जनसमूह था जो राष्ट्रहित के लिए अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन कर रहा था। भारतीय नवजागरण के प्रणेता राजा राममोहन राय भी उन्हीं उदार भारतीय लोगों में से एक थे। राजा राममोहन राय का व्यक्तित्व भारतीय हिन्दू विचारधारा और ईसाई संगठन के सामंजस्य से निर्मित हुआ था, जो इनके आन्दोलन का मूल मन्त्र था।6 शायद इसी सामासिक व्यक्तित्व तथा विचारबिन्दु से अभिप्रेरित राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज'(1828) की स्थापना की थी। चूँकि आलोचनात्मक दृष्टिकोण नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता थी, अतएव, राममोहन राय ने ईसाईयत और हिन्दू धर्म का अन्धानुकरण नहीं किया। इनकी विचार-दृष्टि पर्याप्त रूप से तार्किक अभिवृति से संचालित थी। रामधारी सिंह दिनकर राममोहन राय के सम्पूर्ण समाज सुधार के कार्यों को 'सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य' मानते हैं, जिससे कालांतर में भारत की 'राजनैतिक राष्ट्रीयता' का विकास हुआ।7 मूर्तिपूजा का विरोध और एकेश्वरवाद का समर्थन, वेदान्तवा का पक्ष तथा ईसाईयत के 'ईश्वर-त्रय के सिद्धांत'(फादर सन और होली घोष्ट) का खंडन उन्होंने क्रमशः अपनी पुस्तक 'तुह्फतुल-मुवह हिदीन', 'संक्षिप्त वेदांत' तथा अपने लेख 'ईसाई जनता से अपील' में बड़े ही तार्किक ढंग से किया है।8

राममोहन राय के समाज सुधार के ये कार्य 1857 के पूर्व बंगाली-पट्टी से क्रियान्वित हो रहे थे। परन्तु हिंदी भाषी क्षेत्र में नवजागरण की लहर 1857 के ग़दर के बाद ही देखने को मिलती है। 1875 में बम्बई में स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की, जिसमें 'ब्रह्म समाज' की अपेक्षा अधिक सुधारवादी तीव्र प्रवृति और आंदोलनात्मकता थी। राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे सरीखे बंगाली और मराठी क्षेत्र के नवजागरण से अलग हिंदी क्षेत्र का यह नवजागरण समाज सुधार के साथ-साथ एक क्रांति भी थी। स्वामी दयानंद ने समाज-सुधार की प्रक्रिया में एक अभूतपूर्व तार्किकता को समावेशित कर एक आश्चर्यजनक गति प्रदान की। स्वामी दयानंद ने हिन्दू नवोत्थान की प्रक्रिया में केवल वेदों के दर्शन को स्वीकारा। इस क्रम में स्वामी दयानंद ने वेदों को छोड़कर अन्य सभी हिन्दू धर्मग्रंथों को नकार दिया। 'आर्य समाज' की स्थापना के परिणामस्वरूप स्वामी दयानंद को तत्कालीन समय में त्रि-आयामी संघर्ष झेलना पड़ा था। इस्लाम और ईसाईयत के दो मोर्चों के अतिरिक्त हिन्दू सनातन परंपरा का तीसरा मोर्चा भी इनके दर्शन के विरोध में खड़ा था। हालाँकि इससे पूर्व भी राममोहन राय, महावेद गोविन्द रानाडे आदि समाज सुधारकों को भी समाज का विरोध झेलना पड़ा था, परन्तु स्वामी दयानंद जिस विचारपटल पर खड़े होकर हिन्दू धर्म की स्थापना करना चाहते थे, वह पौराणिक और सनातनी परंपरा के हिंदुत्व से भिन्न वैदिक हिंदुत्व था। विडंबना यह है कि स्वामी दयानंद के प्रचंड शत्रु मुसलमान और ईसाई नहीं, सनातनी हिन्दू ही निकले। परन्तु, हिन्दू-नवोत्थान स्वामी दयानंद के माध्यम से पूर्ण प्रकाश में आ गया। विलक्षण तार्किकता, संस्कृत का अगाध ज्ञान और अद्भुत वाक् क्षमता से लैंस स्वामी दयानंद ने निश्चित ही हिन्दू धर्म के साथ अन्य धर्मों मसलन इस्लाम और ईसाईयत के सभी दुर्बल पक्षों का खंडन किया। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि हिन्दू धर्म के भीतर व्याप्त कुरीतियों का उन्होंने विरोध किया।

इनके अलावा हिन्दू नवोत्थान के लिए 'थियोसोफिकल सोसाइटी'(1875) जैसी संस्था ने भी खूब कार्य किया। रूसी महिला 'हेलेना पोत्रोवना ब्लेवास्की' और 'कर्नल आल्काट' द्वारा अमेरिका में स्थापित इस संस्था ने भी हिंदुत्व के भीतर व्याप्त कुरीतियों का खंडन और विरोध किया। कालांतर में स्वामी विवेकानंद, महायोगी अरविन्द, रविन्द्रनाथ टैगौर और महात्मा गाँधी सरीखे महापुरुषों ने हिंदुत्व नवोत्थान में नए आयामों को जोड़ा। परन्तु इसी समय मुस्लिमों में नोवोत्थान की प्रक्रिया सामानांतर रूप से चल रही थी। 19वीं सदी के पहले और दुसरे दशक के मध्य भारत में अरब से प्रेरित ;वहाबी आन्दोलन' ने इस्लाम के भीतर व्याप्त कुरीतियों, मसलन पीर-फकीरों के पूजन की परंपरा, कब्रों-मजारों पर चढ़ावा चढाने की

परंपरा जैसी इस्लामिक कुरीतियों का विरोध किया। सर सैयद अहमद खां सरीखे मुस्लिम इस आन्दोलन के प्रखर समर्थक थे। राममोहन राय के समान यह भी अंग्रेजी शिक्षा के समर्थक थे। परन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय इतिहास में इनके अंग्रेज शासन के प्रति राजभक्ति के सन्दर्भ भी पर्याप्त रूप से मिलते हैं।9 दूसरी ओर सर मुहम्मद इक़बाल जैसे कवि भी थे, जिन्होंने प्रारंभ में तो पुरे भारतीय नवोत्थान में रूचि दिखाई परन्तु कालांतर में इनका जीवन दर्शन भारत और विश्व के केवल मुसलमानों हेतु प्रकट होने लगा। मुस्लिम नवोत्थान में व्याप्त अन्तःर्विरोधों के फलस्वरूप इक़बाल जैसे महाकवि भी कालांतर में केवल मुस्लिम-राष्ट्रीयता के स्वप्न को आकार देने लगे।10 इस तरह तमाम सामाजिक सुधारों के मुकम्मल प्रयत्नों के बावजूद भी भारतीय नवजागरण की प्रक्रिया विच्छेदकारी प्रवृति में परिणत हो गयी। हिन्दू नवोत्थान के बरक्स मुस्लिम नवोत्थान की प्रक्रिया भी सामानांतर चल रही थी। राममोहन राय, स्वामी दयानंद इत्यादी समाज सुधारकों के हिन्दू नवोत्थान की प्रतिक्रियास्वरूप सैयद अहमद के मुस्लिम नवोत्थान के प्रयास कालांतर में विभेदकारी साबित हुए। अंग्रेजों की 'शासन नीति'(फुट डालो और राज करो) भी पर्याप्त कारण थी। अंग्रेज अपने शासन की सुरक्षा और सुविधा हेतु हिन्दू-मुस्लिम अलगाव को प्रश्रय दे रहें थें और हिन्दू-मुस्लिम नवोत्थान की सामानांतर प्रक्रिया ने इसे और पुख्ता आधार प्रदान किया। जसवंत सिंह ने अपनी पुस्तक 'जिन्ना: भारत विभाजन के आईने में' में अंग्रेजों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम अलगाव को बड़े ही विस्तृत ढंग से समझाया है। अपनी पुस्तक में उन्होंने एक जगह पर अंग्रेजों की इस मानसिकता का जिक्र किया है। जसवंत सिंह के शब्दों में, "शासन के सलाहकार, सदैव एक सहमी हुई सी सलाह देते थे- हिन्दू और मुसलमान कहीं फिर एक साथ हो गये तो हम बहुत गंभीर परेशानी में पड़ जायेंगे।"11 अंग्रेजों ने अपनी इस शासकीय नीति के तहत हिन्दू और मुस्लिम समुदाय में अलगाव को भरपूर प्रश्रय दिया। इस दौर में 'बंग-भंग'(1905), 'मोर्ले-मिंटो सुधार' (1909) अगर अंग्रेजी शासकीय नीति के तहत हिन्दू-मुसलमान के बीच राजनैतिक फांक को उत्पन्न कर रहे थे तो वहीं दूसरी ओर 'मुस्लिम लीग'(1906) 'हिन्दू महासभा'(1915) जैसे प्रतिक्रियास्वरूप उभरे संगठन हिन्दू और मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक, सामाजिक और मानसिक दूरी को भी उत्पन्न कर रहे थे। 1920 के दशक में मध्य हिन्दू और मुस्लिम नवोत्थान के प्रयासों और समाज-सुधार आंदोलनों में स्पष्ट विभाजन दृष्टिगोचित होते हैं।12 हालाँकि बच्चन सिंह नवजागरण के इस सामानांतर प्रतिस्पर्धी अधिरचना को अंतर्विरोधों से भरा हुआ मानते हैं तथा भारतीय नवजागरण की तुलना इटली के 'रिजोर्गमेंटो आन्दोलन' से करते हैं। जिस तरह इटली का आन्दोलन पर्याप्त शक्ति के आभाव और राजनैतिक-आर्थिक प्रभाव के फलस्वरूप लघु सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में परिणत हो गया था, उसी तरह भारतीय नवजागरण भी लघु सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में संलग्न हो गया। हिन्दू-मुस्लिम नवोत्थान के प्रयास तो हो ही रहे थें, केरल के नारायण गुरु और महाराष्ट्र के महात्मा फुले के नेतृत्व में अपने-अपने ढंग के लघु सामाजिक आन्दोलन भी प्रयास में आ रहे थे। सवाल यह उठता है कि फिर नवजागरण के दौरान ही राष्ट्रीयता की अवधारणा का उदय कैसे हुआ? इस संदर्भ में जर्मन दार्शनिक और चिन्तक वाल्टर बेंजामिन(1892-1940) ने अपनी पुस्तक 'द वर्क ऑफ़ आर्ट इन द ऐज ऑफ़ मैकेनिकल प्रोडक्शन'(1936) में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया है कि किसी खतरे के समय संस्कृति का रचनात्मक स्मरण होता है और वह अपने आधारभूत संरचना में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होता है।13 भारतीय नवजागरण के समय भी अंग्रेजी उपनिवेशी खतरे के कारण संस्कृति का रचनात्मक स्मरण अवश्य हुआ परन्तु कालांतर में इन सामाजिक परिवर्तनों के प्रयोजन विभेदकारी सिद्ध हुए। हालाँकि, पश्चिमी संस्कृति के प्रत्युतर में जो सांस्कृतिक जागरण की भारतीय पृष्ठभूमि उभरकर सामने आती है, वह राष्ट्रीय जागरण में परिणत हो गयी, जिसके कारण नवजागरण में समय राष्ट्रीयता के

तत्त्व अनुस्यूत हो गये थे। संस्कृति के इसी अभिरक्षण के क्रम में साहित्यिक परिदृश्य में भी पर्याप्त परिवर्तन दिखाई देते हैं। उपन्यास और कहानी विधा का अवतरण इसी की प्रतिक्रिया था।

यद्यपि, तत्कालीन परिदृश्य के हिंदी कथा साहित्य में साम्प्रदायिकता का चित्रण यथेष्ठ रूप से नहीं किया गया है, या यूँ कहें तो बिलकुल नहीं। इस पूरी अवधि में एकमात्र 'राधाकृष्ण दास' के उपन्यास 'निस्सहाय हिन्दू'(1890) को अगर छोड़ दिया जाए तो पुरे कथा साहित्य में साम्प्रदायिकता का चित्रण नगण्य है। हिंदी उपन्यासों और कहानियों में समाज सुधार आन्दोलनों के प्रभाव के फलस्वरूप समाज की कुरीतियों और रूढ़ परंपरागत सिद्धांतों से प्रश्न तो किये जा रहे थे परन्तु साम्प्रदायिकता की उभरती प्रवृति या इसके आरंभिक चरण को तत्कालीन समय के कथाकारों ने लगभग अनदेखा कर दिया। उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि हिंदी कहानी का तो जन्म ही 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन(1900) के साथ हुआ, जो भारतीय नवजागरण के विकास का द्वितीय चरण था।14 परन्तु हिंदी उपन्यास में साम्प्रदायिकता की आरंभिक प्रवृति के दर्शन होते हैं, भले ही एक उपन्यास में मिलते हो। अब सवाल यह है कि ऐसा कैसे संभव हुआ? जिस दौर में कई प्रबुद्ध बुद्धिजीवी धर्म, दर्शन, राजनीति, साहित्य आदि स्तरों पर भारतीय आत्मा की प्रतिष्ठा में संलग्न थे, उस दौर के हिंदी कथा साहित्य में साम्प्रदायिकता सम्बन्धी इतनी विशाल रिक्तता क्यों दिखाई देती है? दरअसल 'निस्सहाय हिन्दू' के रचनाकाल के ऐतिहासिक परिदृश्य(1890) को अगर देखा जाये तो ज्ञात होगा कि 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुस्लिम की जो एकता व्यक्त हुई, उसमें पर्याप्त परिवर्तन आ चुके थे। हिन्दू और मुस्लिम नवोत्थान की सामानांतर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नवजागरण के दौर में जिस 'राष्ट्रवाद' की संकल्पना की गयी थी, वह दो अलग-अलग समुदायों के राष्ट्रवाद में तब्दील हो चुका था।15 प्रियंवद ने अपनी पुस्तक 'भारत विभाजन की अन्तःकथा' में 'पैन हिंदूइज्म और पैन इस्लामिज्म अर्थात 'अखिल हिंदुत्व' और 'अखिल इस्लाम' को भारतीय नवजागरण की रीढ़ कहा है।16 दरअसल, नवजागरण के दौर के हिंदी कथा साहित्य को प्रेमचंदपूर्व युग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, जिसका आरंभ 1877 में श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' के प्रकाशन के साथ हुआ था। नवजागरण के दौर में समाज-सुधार के जो प्रयत्न हो रहे थें, उसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन समय के उपन्यासों में अवश्य मिलते हैं, परन्तु अंग्रेजी साहित्य के प्रभाववश तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों का भी सृजन हो रहा था। इस तरह के उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता' का नाम अग्रगण्य है। दरअसल इस दौर में एक ओर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक जागरण के उद्देश्य से लिखे गये 'भाग्यवती', 'परीक्षागुरू', 'नूतन ब्रह्मचारी' निस्सहाय हिन्दू' जैसे उपन्यास मिलते हैं वहीं दूसरी ओर केवल शुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गये तिलिस्मी और जासूसी ढंग के मसलन, 'चंद्रकांता', 'जासूस' जैसे उपन्यास भी मिलते हैं। विडंबना यह थी कि तिलस्मी-ऐय्यारी-जासूसी उपन्यासों ने एक ओर पाठकों की संख्या में भरी वृद्धि की थी17, वहीं दूसरी ओर इन उपन्यासों पर व्यावसायिकता की प्रवृति का अरोप भी लगा था।18 हालाँकि, राजेन्द्र यादव को 'चंद्रकांता' में 'हिन्दू धर्म की स्थापना का प्रच्छन्न उद्देश्य'19 दिखाई देता है। समाज सुधार के साहित्यिक प्रयासों के क्रम में राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू'(1890) ही एकमात्र ऐसा उपन्यास मिलता है जिसमें सांप्रदायिक सद्भाव की स्थापना का उद्देश्य दिखाई देता है। इस उपन्यास में अब्दुल अजीज जैसे पात्र का सृजन हुआ है जो मुसलमान होते हुए भी गोवध को रोकने के प्रयत्न में अपने प्राण दे देता है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की कूटनीति और धार्मिक कट्टरता का उल्लेख भी इस उपन्यास में मिलता है। 'निस्सहाय हिन्दू' में हिन्दू समाज में व्याप्त परंपरागत रूढ़ियों की आलोचना के साथ-साथ तत्कालीन 'हिन्दू संगठनों' के विभेदकारी प्रयोजनों का भी उल्लेख किया गया है। इस उपन्यास में हाजी अताउला और मदनमोहन

जैसे कट्टरपंथी मुस्लिम और हिन्दू वर्ग के पात्रों का सृजन किया गया वहीं अब्दुल अजीज जैसे उदार मुस्लिम वर्ग के पात्र भी आये हैं।20

हालाँकि, इस दौर में उपन्यास लेखन की तीसरी धारा 'ऐतिहासिक उपन्यासों' की भी रही। किशोरीलाल गोस्वामी सरीखे उपन्यासकार इस दौर में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर रहे थे, परन्तु दुर्भाग्य से इनके उपन्यास 'हिन्दू धर्म केन्द्रित उपन्यास' बन पड़ते जिसमें 'हिन्दूपन' स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बच्चन सिंह किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों के संबंध में अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में लिखते हैं, "किशोरीलाल गोस्वामी ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, किन्तु उनमें इतिहास कम है-तिलिस्म, जासूसी और हिन्दुवाद का कॉकटेल अधिक है।"21 अब सवाल यह है कि बतौर बच्चन सिंह क्या वाकई में किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में सिर्फ हिन्दुवाद अभिव्यक्त हुआ है? इस प्रश्न का समाधान किशोरीलाल गोस्वामी के 'सुल्ताना रजिया बेगम व रंगमहल में हलाहल(1904)' उपन्यास में मिलता है, जहाँ किशोरीलाल गोस्वामी ने ऐसे पात्रों का सृजन किया है, जिसमें से कुछ तो घोर परम्परावादी और कट्टरपंथी स्वाभाव के दिखाई देते हैं और कुछ पात्र उदार और सद्भाव की बात करते हुए। 'रजिया बेगम' उपन्यास में एक ओर जहाँ हरिहर शर्मा के माध्यम से हिन्दू जाति के लोगों की धर्मभीरुता को अभिव्यक्त किया गया है22 वहीं दूसरी ओर स्वामी ब्रह्मानंद के माध्यम से एक उदार सांप्रदायिक दृष्टिकोण को स्थापित करने का प्रयत्न भी है।23 परन्तु इसके बाद के उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी कहीं हिन्दू धर्म, नीति की श्रेष्ठता को प्रतिस्थापित करते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं अंग्रेजी शासन का गुणगान करते हुए भी। विरोधाभासी औपन्यासिक रचना कलेवर के साथ किशोरीलाल गोस्वामी तत्कालीन समय के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। सवाल यह है कि गोस्वामीजी के इस औपन्यासिक कलेवर की बदलती हुई प्रक्रिया का आधार क्या था? इस प्रश्न का उत्तर तत्कालीन समय की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में गुंफित है। दरअसल किशोरीलाल गोस्वामी जिस समय उपन्यासों की रचना कर रहे थे उस समय देवकीनंदन खत्री के उपन्यास अपनी प्रसिद्धि के चरम पर थे। गोपालराय ने अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में स्पष्ट इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि खत्रीजी के उपन्यासों का इतना प्रभाव था कि उनका उनके जीवनकाल में ही अनुकरण प्रारंभ हो गया था। किशोरीलाल गोस्वामीजी भी देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों से खासा प्रभावित थे।24 वहीं दूसरी ओर किशोरीलाल गोस्वामी जैसे कई उपन्यासकार इस दौर में 'पौवार्त्यवाद' की अवधारणा का विरोध करते हुए नज़र आ रहे थे। जिसके फलस्वरूप किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास जातियों की अतिबहुलता और स्वायत्त सत्ता के प्रभाव में आ गये। परिणामतः किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में नख-सिख वर्णन, प्रकृति, विरह आदि परंपरागत साहित्यिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ हिन्दू धर्म की गौरवगाथा भी अभिव्यक्त हुई है। इस क्रम में किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यासों में मुसलमान पात्रों को खल पात्र के रूप में वर्णित किया है। शायद इसलिए बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारत मित्र'(1903) में अपने संपादकीय में इस बात की तीखी आलोचना की थी कि गोस्वामीजी के उपन्यासों में मुसलमान पात्रों का चित्रण कुत्सित रूप में किया गया है।25 किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया कई विराधाभासों को अपने भीतर समाहित किये तत्कालीन समय के अंतर्विरोधी सामाजिक गतिविधियों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थें, फलतः इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू धर्म की गौरवगाथा के साथ-साथ सांप्रदायिक सद्भाव के चित्र भी प्रस्तुत हैं। रही बात इनके उपन्यासों की प्रमाणिकता की तो बतौर गोपालराय गोस्वामीजी की इतिहास दृष्टि अवैज्ञानिक और दोषपूर्ण है, परन्तु समकालीन सन्दर्भों में इसे ख़ारिज नहीं किया जा सकता।26

इस दौर में कुछ ऐसे भी उपन्यास लिखे गयें जिसमें हिन्दुपन का स्पष्ट नमूना परिलक्षित होता है। पंडित लज्जाराम मेहता के 'हिन्दू गृहस्थ'(1902), सुशीला विधवा'(1907) 'आदर्श हिन्दू'(1914) आदि उपन्यासों में सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के दिग्दर्शन के साथ-साथ उपदेशात्मक प्रवृति के भी दर्शन होते हैं। लज्जाराम मेहता ने सनातनी हिन्दुओं की समस्याओं को अपने उपन्यासों का प्रमुख आधार बनाया है। इनके अधिकतर उपन्यासों में आधुनिक शिक्षा, विचारधारा व आचार-विचार आदि का खंडन कर सनातन धर्मी रीतिरिवाजों व परम्पराओं के पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया है। 'बिगड़े का सुधार या सती सुखदेवी'(1907) जैसे उपन्यास में सती-प्रथा का समर्थन और विधवा विवाह का विरोध किया गया है।27 'आदर्श हिन्दू'(1914) में तीर्थ यात्रा के व्याज से एक ब्राह्मण कुटुंब में सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दूपन का नमूना, आजकल की त्रुटियाँ, राजभक्ति का स्वरूप, परमेश्वर भक्ति का आदर्श और विचारों की बानगी प्रस्तुत की गयी है।28 शायद इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पंडित लज्जाराम मेहता को अख़बारनबीस उपन्यासकार मानते हैं जिनके उपन्यासों में पुरानी हिन्दू मर्यादा, हिन्दू धर्म और हिन्दू पारिवारिक व्यवस्था की सुंदरता और समीचीनता को अभिव्यक्त किया गया है।29

अतएव, नवजागरणकालीन हिंदी उपन्यासों के समग्र अवलोकन के पश्चात् यह निष्कर्ष उभरकर सामने आता है कि इस दौर के उपन्यासों में समाज सुधार और पुरातनप्रियता की प्रवृति एकसाथ उपस्थित थी। यह निश्चित ही तत्कालीन समय के समाज-सुधार आंदोलनों और पौवार्त्यवाद का सम्मलित प्रभाव था, जिसमें हिन्दू-धर्म की परंपरागत रूढ़ियों पर प्रहार तो किया जा रहा था परन्तु हिंदुत्व नवोत्थान के उत्कर्ष के साथ। प्रतिक्रिया और प्रयोग के सम्मिश्रण से इस दौर के उपन्यासों की रूपरेखा निर्मित होती है, जिसके निमित्त तिलिस्मी-जासूसी उपन्यासों के साथ-साथ सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना हो रही थी। इस दौर में एकमात्र राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय हिन्दू' उपन्यास में ही सांप्रदायिक सद्भाव का चित्रण किया गया है, जिसकी मुख्य समस्या गोवध निवारण है। इसके अतिरिक्त इस दौर के किसी भी उपन्यास में सांप्रदायिक सद्भाव का अंकन नहीं मिलता। हाँ, छुटपुट सन्दर्भ अवश्य मिलते हैं, परन्तु, मुस्लिम समुदाय के प्रति पूर्वग्रही दृष्टिकोण से इस दौर का उपन्यास साहित्य भरा पड़ा है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1.बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ.278

2."पुनर्जागरण एक ऐसी सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो बहुत से देशों के इतिहास में घटित होती रही है। इनके कालखंड और निमित्त अलग-अलग रहे हैं। संक्षेप में, पुनर्जागरण दो संस्कृतियों, जातियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है।" रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ.80

3. "मिल्टन की कविताओं में भारत तथा पूर्वी देशों का जहाँ भी उल्लेख आया है, वहां रेशम और जवाहर की जगमगाहट खूब दिखाई देती है।" रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.357

4.'फ्रांकोइस बर्नियर(1620-1688) ने औरंगजेब के शासनकाल में 12 वर्षों तक भारत में प्रवास किया था। भारत प्रवास के इस अनुभव को इन्होंने अपनी पुस्तक ''Travels in the Mogul Empire A.D 1656-1668' में पिरोया है, जिसमें इन्होने भारत को धन-वैभव-सम्पदा और ऐश्वर्य से संपन्न बताया है। .

5.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.362

6."राममोहन राय ने अपना चिंतन उपनिषदों से ग्रहण किया, पर हिन्दू आराधना शैली की परंपरागत एकांतिक पद्धति को छोड़कर उन्होंने यूरोपीय चर्च का संगठन स्वीकार किया, जिसमें पूजन की सामूहिक पद्धति प्रचलित थी।" रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ.80

7."भारत में ईसाईयत का प्रचार, ईसाईयों के द्वारा भारतीय धर्मों की निंदा, यूरोप के क्रांतिकारी, बुद्धिवादी विचार और अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं द्वारा हिंदुत्व की भत्सर्ना, ये कुछ कारण थे, जिनसे हिंदुत्व की नींद टूटी। उसकी पहली अंगड़ाई ब्रह्म-समाज में प्रकट हुई और उसके नवोत्थान के आदि पुरुष राजा राममोहन राय हुए। राममोहन साधक की अपेक्षा राजनीतिज्ञ और सामाजिक नेता अधिक थे। इसलिए, धर्म के अध्ययन और विश्लेषण से उन्होंने वह शक्ति निकालनी चाही, जिससे हिन्दू क्रिस्तान होने से बच सकते थे, जिससे वे यूरोप के ज्ञान और पद्धति को अपनाकर अपने खोये हुए अधिकार फिर से प्राप्त कर सकते थे। वे धर्म के सुधारक कम, समाज के सुधारक अधिक थे। उन्होंने जो कुछ किया, उसे हम सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य कह सकते हैं। भारत की राजनैतिक राष्ट्रीयता इसी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का विकसित रूप है।" रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.391

8.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.391-392

9.सैयद अहमद अपनी पुस्तक, 'द लॉयल मोहम्मडंस ऑफ इंडिया'(1860) में 1857 के ग़दर में दौरान मुसलमानों की अंग्रेजों के प्रति निष्ठा का उल्लेख किया है तथा 'मोहम्मडन एंग्लो-ओरिएंटल कॉलेज'(1875) जो कालांतर में 'अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय' में परिणत हुआ, की स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य केवल मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करना था। सैयद अहमद अनजाने में ही अंग्रेजों की सहानुभूति और आकर्षण पाने के लिए हिन्दू-मुस्लिम अलगाव के निमित बनते गये।, रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.485-490, घनश्याम सक्सेना, तीन गोलियों से तीन गुम्बद तक, पृष्ठ.147-148

10."'तरनाए-हिन्द', 'नया शिवालय', 'बांगे दर्रा' जैसी रचनाओं में इकबाल के सम्पूर्ण भारतीय भारतीयता के दर्शन अवश्य होते हैं, परन्तु कालांतर में इनकी रचनाओं में केवल मुस्लमान राष्ट्रीयता के भाव के दर्शन होने लगे। सैयद अहमद की अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति से इक़बाल का मन भारतीय राष्ट्रीयता से बिदक गया और उनकी कल्पना भिन्न दिशा में मंडराने लगी। वे तन-मन से इस्लाम के उद्धार में लग गये। चूँकि भारतीय प्रजातंत्र में मुसलमानों के प्रमुख सत्ताधारी होने की संभावना नहीं थी, इक़बाल ने प्रजातंत्र को ही नकार दिया। चूँकि मुस्लमान सारे विश्व में फैले हुए थे, इसलिए उन्होंने एक ऐसी राष्ट्रीयता की कल्पना कर ली, जिसका आधार देश नही, धर्म था। और इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने इस्लाम को सर्वश्रेष्ठ धर्म, मुसलमानों को सर्वश्रेष्ठ मानव और इस्लाम बंधुत्व को राष्ट्रीयता का श्रेष्ठतम रूप मान लिया। इक़बाल के पूर्व सैयद हाली, शिबली और अमीर अली ने इस्लाम के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा था, उसका निचोड़ इक़बाल की कविता में प्रविष्ट हो गया एवं पिछले समस्त आंदोलनों का दर्शन इक़बाल के काव्य से आप-से-आप तैयार हो गया। इक़बाल के इस मत परिवर्तन से सभी प्रगतिशील लोग कराह उठे।" रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ.500-501

11.जसवंत सिंह, जिन्ना: भारत विभाजन के आईने में', अनुवाद-तुफैल चतुर्वेदी, पृष्ठ.57

12.“1920 के दशक के मध्य में हिन्दू आंदोलनों के प्रत्युतर स्वरूप मुस्लिम प्रयास भी हुए, उनमें से अधिकतर में न तो ठीक से समन्वय था और शायद इसलिए ये उतने प्रभावी नहीं रहे। इसी बीच में महासभा के ‘महावीर दल’ के जवाब में ‘अली गौल’ के नाम से शारीरिक सांस्कृतिक टुकड़ी गठित करने का प्रयास किया गया लेकिन इसके नतीजे ऐसे ही रहे।” जसवंत सिंह, जिन्ना: भारत विभाजन के आईने में’, अनुवाद-तुफैल चतुर्वेदी, पृष्ठ.188

13.Walter Benjamin, The Work of art in the age of mechanical reproduction, Translated by- J.A.Underwood, pg-11-14

14.गोपालराय, हिंदी कहानी का विकास, पृष्ठ.42

15. “राष्ट्रवाद दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से दो अलग-अलग समुदायों में, अलग-अलग धाराओं के रूप में आया। मुस्लिम समाज, धर्म, समुदाय में अलग और हिन्दू समाज, धर्म, समुदाय में अलग रूप में। तत्कालीन समाज व राजनीति में किसी भी तरह ‘नितांत भारतीय पुनर्जागरण’ व ‘एकल भारतीय राष्ट्रवाद’ जैसी कोई चीज नहीं थी।” प्रियंवद, भारत विभाजन की अन्तःकथा, पृष्ठ.170

16.प्रियंवद, भारत विभाजन की अन्तःकथा, पृष्ठ.170

17.देवकीनंदन खत्री हिंदी के ऐसे प्रथम कथाकार हैं जिन्होंने तत्कालीन साक्षरमात्र, बोलचाल के उर्दू शब्दों और मुहाविरों से खूब परिचित, पर संस्कृत ज्ञान से रहित, संभावित हिंदी पाठकों की, जो अपनी विशाल संख्या के बावजूद लेखकों की नज़र से दूर थे, पठान-योग्यता और रूचि को पुर्णतः ध्यान में रखते हुए कथापुस्तकों की रचना की।” गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.70

18.बालकृष्ण भट्ट ने ‘हिंदी प्रदीप’ के जनवरी-मार्च अंक, 1890 के अंक में खत्रीजी के उपन्यासों में व्यावसायिकता की प्रवृति की आलोचना की थी। गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.73

19.राजेंद्र यादव, अठारह उपन्यास, पृष्ठ.21

20.गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.45-46

21.बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ.383

22. ‘रजिया बेगम’ उपन्यास का पात्र हरिहर शर्मा कहता है, “आप इस बात को सच माने कि जो सचमुच हिन्दू होगा, वह कभी भी भिन्न धर्मावलंबी के उपासनागर में उनके धर्म के विरुद्ध कोई अपवित्र वस्तु न फेकेंगा। मुसलमान हिन्दुओं से जैसे बर्ताव करते हैं, इसे सारा संसार जानता है, पर क्या आप ऐसा एक भी प्रमाण दे सकते हैं कि किसी हिन्दू ने कहीं किसी मस्जिद को गिराया हो या फिर कुरानशरीफ को जलाया हो? यह बात शांत और धर्मभीरु हिन्दुओं के स्वाभाव से कोसों दूर है।” उद्धृत, गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.86

23.उपरिवत उपन्यास का एक पात्र ‘स्वामी ब्रह्मानंद की उद्भावना है, “खुदा के सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों बराबर हैं। हिन्दू उसे राम कहकर पूजते हैं और मुसलमान खुदा कहकर। हिन्दू उसकी मूरत बना कर पूजते हैं और मुसलमान बगैर मूरत रखे ही उसका ध्यान करते हैं। लेकिन खुदा हिन्दू और मुसलमान

दोनों का एक ही है और वह दोनों की परस्सित्श से एक सा खुश होता है।" उद्धृत, गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.88

24.ध्यातव्य है कि जिस समय देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता का आरंभ किया था लगभग उसी समय किशोरीलाल गोस्वामी ने उपन्यासों की रचना आरंभ की थी, परन्तु सन 1900 तक इनके उपन्यास पुस्तककार रूप में प्रकाशित नहीं हो सके। 1901 में देवकीनंदन खत्री की 'उपन्यास लहरी मासिक पुस्तक'(1894) के अनुकरण पर 'उपन्यास मासिक पुस्तक' का प्रकाशन आरंभ किया जिसमें उन्होंने उनके पूर्वलिखित उपन्यासों के साथ-साथ नए ऐतिहासिक और सामान्य उपन्यास प्रकाशित किये। गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.78-79

25.गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.83

26.गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.82-83

27.गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ.114-115

28.रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृष्ठ.150

29.रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ.336